यीशु का आत्मिक पहलू

यीशु के मनुष्य होने की जांच करते हुए, लगता है कि वास्तव में हमें वे ढंग खोजने चाहिए जिनमें वह हमारे जैसा था। परन्तु चुनौती इसके विपरीत है। हमें एक मानवीय जीव के रूप में उसके जीवन के बराबर होने के लिए प्रयत्न करने के ढंग खोजने चाहिए। यह स्पष्ट है कि इसकी बहुत आवश्यकता है। मत्ती 5 में धन्यवादियां पढ़ने पर हमें इसका अहसास होता है। एक जटिल तत्व हमारा कार्य और कठिन कर सकता है। हो सकता है कि हम अपने ही मनुष्य होने के प्रति आश्वस्त न हों। उदाहरण के लिए, हम आत्मा और प्राण को कैसे देखते अर्थात समझते हैं? यीशु में आत्मा और प्राण दोनों थे। हम में भी हैं। ये उसके और हमारे मनुष्य होने के महत्वपूर्ण भाग हैं। यीशु जैसा बनने वाला मसीही अपनी ही आत्मा और प्राण को सफलतापूर्वक कैसे सम्भालता? हमें मानना पड़ेगा कि यह प्रश्न कठिन है। एक मानवीय जीव के रूप में हम यीशु में आत्मा और प्राण होने के महत्व को कैसे देख सकते हैं?

उसके आत्मिक स्वभाव की व्याख्या

पहले, हमें आत्मा (*pneuma*) और प्राण (*psuche*) को अभौतिक रूप में समझना चाहिए। इस अर्थ में दोनों ही ''आत्मिक'' हैं। इसलिए आत्मा और प्राण एक ही तत्व अर्थात आत्मा से बने हैं। फिर हम इनमें अन्तर क्यों करते हैं? वह अन्तर क्या है? कई बार इन दोनों शब्दों का एक दूसरे के स्थान पर इस्तेमाल होने के कारण अन्तर करना कठिन हो जाता है।

हम देखते हैं कि आत्मा (*pneuma*) में हम सदा तक जीवित रहते हैं। लूका ने प्रथम मसीही शहीद स्तिफनुस के अन्तिम शब्दों में उसकी यह प्रार्थना लिखी: ''हे प्रभु यीशु, मेरी आत्मा को ग्रहण कर'' (प्रेरितों 7:59)। क्रूस पर मरते समय, यीशु ने कहा था, ''हे पिता, मैं अपनी आत्मा तेरे हाथों में सौंपता हूं'' (लूका 23:46)। वह भजन संहिता 31:5 से उद्धृत कर रहा था जहां इसके समान शब्द रूआह (*ruach*) मिलता है। यह उदाहरण पुराने और नये दोनों नियमों के विचार कि ''आत्मा परमेश्वर के पास जिसने उसे दिया लौट जाएगी'' (सभोपदेशक 12:7) की झलक देते हैं। फिर हम देखते हैं कि किसी की आत्मा (*न्यूमा*) को ऊपर उठाया जाता है जो उसके अस्तित्व का खत्म न होने वाला भाग है।

दूसरी ओर, प्राण (स्यूक) है और वह भी अभौतिक। परन्तु प्राण मनुष्य की ऊपर

उठाए जाने वाली प्रकृति नहीं है। यह मानवीय मनोभावों का आसन या माध्यम है जिसे हम प्राकृतिक या पशु कह सकते हैं। यहूदा ने उन लोगों की बात की थी जो अपने अस्तित्व के भाग पशु या प्राकृतिक को प्राथमिकता देते हैं। उसने कहा, ''यह तो वे हैं, जो फूट डालते हैं; ये शारीरिक लोग हैं, जिनमें आत्मा नहीं'' (यहूदा 19)। यहूदा ने लोगों को *psuchikoi* अर्थात ''प्राकृतिक'' मनुष्य कहा है। क्योंकि *स्यूक* शरीर *नहीं* है, इसलिए हमें इस बात की समझ है कि यहूदा और नये नियम के अन्य लेखकों ने उस अभौतिक स्वभाव का संकेत देने के लिए इस शब्द का इस्तेमाल किया जिसने शरीर (*sarx*) की इच्छाओं और अभिलाषाओं के आगे समर्पण कर दिया है।

क्योंकि ''शरीर'' नाशवान (प्राकृतिक, पशु) मनुष्य का भाग है, इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि ''युद्ध'' मनुष्य के नाशवान और अविनाशी पहलुओं के बीच है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मानवीय जीवों का प्राकृतिक भाग अपने स्वभाव से बुरा है। ''शरीर और आत्मा का मेल तभी नहीं होता जब शरीर परमेश्वर में भरोसा रखना भूल जाता है जो आत्मा है और अपने आप पर भरोसा रखता है, यिर. 17:5से; 2 इति. 32:8.''[1]

फिर, शरीर (*soma*) है। शरीर रूप है। शरीर निर्जीव वस्तुओं का भी होता है। पौलुस ने बीजों के शरीरों की बात भी की है; उसने पृथ्वी के शरीरों जैसे पक्षियों और मछलियों का भी उल्लेख किया; उसने सूर्य और तारों जैसे स्वर्गीय शरीरों की बात भी की थी (1 कुरिन्थियों 15:36-41)। यह शब्द सभी जीवित प्राणियों पर भी लागू होता है। उदाहरण के लिए, याकूब ने घोड़ों के शरीरों की बात की है (याकूब 3:3)।

हमारी दिलचस्पी इस बात में अधिक है कि *सोमा* हमारे मानवीय शरीरों पर भी लागू होता है। हमारा शरीर हमारे व्यक्तित्व का प्रदर्शन है। यह आश्चर्य की बात है कि किसी की अंगुलियों के चिह्न दूसरे व्यक्ति के चिह्नों से नहीं मिलते हैं। व्यक्तियों के रूप में हमारे शरीर हमारे अस्तित्व का प्रमाण हैं। परमेश्वर की सृष्टि के रूप में हम जीवित हैं, चलते फिरते हैं और उन शरीरों में हैं जिनके साथ हमारा जन्म हुआ था। हमारे शरीर भौतिक हैं। इस कारण वे अविनाशी नहीं हैं। परन्तु, पृथ्वी पर रहते हुए वे ऐसे हथियार हैं जिनके द्वारा हम अस्तित्व के अर्थ में अपने ''होने'' को व्यक्त करते हैं।

यह सब ध्यान में रखकर, शायद हम थिस्सलुनीके के मसीहियों के लिए पौलुस की प्रार्थना की और भी अधिक सराहना कर सकें: ''शान्ति का परमेश्वर आप ही तुम्हें पूरी रीति से पवित्र करे; और तुम्हारी आत्मा [*pneuma*] और प्राण [*psuche*] और देह [*soma*] हमारे प्रभु यीशु मसीह के आने तक पूरे पूरे और निर्दोष सुरक्षित रहें'' (1 थिस्सलुनीकियों 5:23)। अन्य शब्दों में, पौलुस प्रार्थना कर रहा था कि उनका सम्पूर्ण आत्मिक, मानवीय और भौतिक स्वभाव परमेश्वर के सामने निष्कलंक रहे।

पृष्ठ 138 पर दिखाए गए चार्ट में ''शरीर'' (*सोमा*) नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वास्तव में यह ''वहां'' नहीं है। शरीर हमारे होने का स्वरूप है। यह वह हथियार है जिसमें व जिसके द्वारा चार्ट के सभी तत्व मिलकर कार्य करते हैं। इस प्रकार हम अपने निजी व्यक्तियों या व्यक्तित्वों को व्यक्त करते हैं।

यीशु का आत्मिक स्वभाव दिखाया गया

हम यीशु के मनुष्य होने को समझने और उसके महत्व को जानने के लिए आत्मा, प्राण और देह के संदर्भ में अपने मनुष्य होने पर विचार कर रहे हैं। उसके मनुष्य होने में ये सभी गुण थे। अब हम पूछते हैं, ''*एक मानवीय जीव के रूप में* हमने उसके आत्मिक स्वभाव को कैसे दिखाया है ?''

प्रार्थना से भरा उसका जीवन

उसके जीवन के इस पहलू को हम कम से कम दो आश्चर्यजनक ढंगों से देखते हैं। पहले, हम प्रार्थना से भरे उसके जीवन पर विचार करेंगे। उसका जीवन विस्मित करने वाला था। परमेश्वर पुत्र देहधारी होने से पहले और बाद में भी परमेश्वर का पुत्र ही था। फिर, परमेश्वर पुत्र ने परमेश्वर पिता से प्रार्थना क्यों की ? परमेश्वर पुत्र मनुष्य भी था। *वह मनुष्य होने के समय उतना ही मनुष्य था जितना परमेश्वर होने के समय ईश्वरीय!*

हम पढ़ते हैं कि यीशु ''जंगलों में अलग जाकर प्रार्थना किया करता था'' (लूका 5:16)। उसने चेलों से मिलने के लिए पानी पर चलने से पहले शाम को पहाड़ पर जाकर अकेले प्रार्थना की थी (मत्ती 14:23)। उसने कफरनहूम में भी दिन निकलने से पहले भोर में एकांत में प्रार्थना की थी (मरकुस 1:35)। अपने प्रेरितों को चुनने से थोड़ा पहले वह सारी रात पहाड़ पर प्रार्थना करता रहा था (लूका 6:12)। अपने चेलों से यह पूछने से थोड़ा पहले कि भीड़ उसे क्या समझती थी, वह एकांत में प्रार्थना कर रहा था (लूका 9:18)। वह पहाड़ पर प्रार्थना करने के लिए गया था जहां उसका रूप बदल गया था (लूका 9:28, 29)। अपने चेलों को प्रार्थना पर सबक देने से थोड़ा पहले उसने अकेले में प्रार्थना की थी (लूका 11:1)।

सुसमाचार के लेखकों ने इन सब बातों को क्यों लिखा ? शायद यह *तथ्य* कि यीशु प्राय: एकांत में प्रार्थना करता था, उसके मनुष्य होने की उससे भी बड़ी गवाही है जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की हो।

शायद हम अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानते हैं कि प्रार्थना के बिना मनुष्य का जीवन उजाड़ और निष्फल हो जाता है। प्रार्थना की बातें व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार होती हैं। प्रार्थना करने वाले मसीह के नमूने के अनुसार अपने जीवनों को बनाने वाले सभी लोगों के लिए प्रार्थना स्थिरता का आधार है। परमेश्वर से दूर रहकर और बिना प्रार्थना के जिसके द्वारा हम अपने प्रेम तथा भक्ति, निर्भरता, कृतज्ञता और बिनतियों को लाते हैं, मानवीय जीवन की आशा नहीं की जा सकती। यीशु अपने पिता के पास प्रार्थना लेकर जाता रहता था। वह हमारा आदर्श है।

यीशु की प्रार्थना भरी बातें सुनकर कि उसने क्या प्रार्थना की थी, हमारा मन स्तुति, आनन्द और धन्यवाद से भर जाता है। पतरस के लिए यीशु के कथन को महत्व देने के लिए रुकते हैं: ''मैं ने तेरे लिए बिनती की, कि तेरा विश्वास जाता न रहे'' (लूका 22:32क)। यद्यपि पवित्र शास्त्र में यह एक विलक्षण कथन है, परन्तु हमें आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त है कि यीशु की दिलचस्पी व्यक्तिगत तौर पर आपके और मेरे लिए प्रार्थना में बिनती करने

में है। यह उसके मनुष्य होने का कितना बड़ा प्रदर्शन है! दूसरों के लिए अपनी प्रार्थनाओं में, हम उनके जीवनों को परमेश्वर के अनुग्रह, प्रेम, क्षमा और सामर्थ के प्रबन्ध में रखते हैं। यीशु ने लोगों के लिए अपने पिता से वैसे ही प्रार्थना की थी जैसे हम करते हैं। प्रार्थना सचमुच में सच्चे इन्सान की पहचान है।

यूहन्ना 17 यीशु की प्रार्थना का सबसे व्यापक रूप है। इसकी व्यापकता लम्बाई में ही नहीं, बल्कि इसके दायरे में भी है। उसने अपने लिए, अपने चेलों के लिए और उन सब के लिए प्रार्थना की थी जो उनका संदेश सुनकर चेले बनने थे। क्या वह सभी विश्वासियों के लिए प्रार्थना कर रहा था, जैसे उसने पतरस के लिए की, ''कि तेरा [हमारा] विश्वास जाता न रहे''? (देखिए लूका 22:31, 32)। क्या मसीह में अपने साथियों के लिए हम यह प्रार्थना नहीं करते हैं?

यीशु के प्रार्थना भरे जीवन के बारे में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है, कहा जाना चाहिए और कहा जाएगा। गतसमनी में और क्रूस पर उसकी प्रार्थनाएं किसी भी अन्य बात से उसके मनुष्य होने को अधिक स्पष्टता से दिखाती हैं।

कलवरी पर उसकी मृत्यु

टीवी पर किसी शैक्षिक कार्यक्रम को देखते हुए यीशु के गतसमनी के अनुभव को पढ़ना आसान है। हमारा ध्यान स्तम्भों की ओर जा सकता है। हम प्रस्तुतकर्त्ताओं की तकनीकों की सराहना कर सकते हैं। हम उनके ''अभिनय'' की योग्यता से भी प्रभावित हो सकते हैं। हां हम देखते हैं कि उससे सीखा जा सकता है, परन्तु हो सकता है कि हम उसे *वास्तविक* न मानें। हम इसे केवल एक प्रस्तुति के रूप में देखते हैं। क्या यीशु, अर्थात उत्तमगुरु, गतसमनी में एक और सबक दे रहा था? क्या वह हमें यह सिखाने की कोशिश कर रहा था कि यदि हम अपनी समस्याओं को परमेश्वर के पास ले जाएं तो वह हमें आराम देगा? *नहीं!* प्रार्थना से पहले, यीशु ने कहा था, ''मेरा जी बहुत उदास है, यहां तक कि मेरे प्राण निकलना चाहते हैं।'' प्रार्थना करते हुए, उसने कहा था, ''हे मेरे पिता, यदि हो सके, तो यह कटोरा मुझ से टल जाए।'' उसने इतनी वेदना से प्रार्थना की थी कि ''उसका पसीना मानो लहू की बड़ी-बड़ी बूंदों की नाईं भूमि पर गिर रहा था।'' उसने यह भी प्रार्थना की थी, ''मेरी नहीं परन्तु तेरी ही इच्छा पूरी हो'' (मत्ती 26:36-45; मरकुस 14:32-40; लूका 22:39-46)।

बाग में यीशु ''अभिनय'' नहीं कर रहा था। उसका कष्ट वास्तविक था। यीशु के लिए अपने जीवन का सबसे कठिन संघर्ष वह अपेक्षित क्रूस था। वह भलाई और बुराई का वैश्विक युद्ध लड़ रहा था। वह ''व्यक्तित्व हीनता'' या अव्यावहारिक रूप से नहीं लड़ रहा था। यह *एक मनुष्य के रूप में,* यीशु नामक व्यक्ति का शैतान के विरुद्ध मुकाबला था! परमेश्वर पिता ने उद्धार की अपनी योजना मनुष्य यीशु पर केन्द्रित रखी थी। क्या वह योजना गतसमनी में निष्फल हो जाती? क्या यीशु ''कटोरे'' से भागने में परीक्षा में पड़ जाता?

इस नाटकीय दृश्य पर पुनर्विचार करते हुए जब तक हम कठिन मानसिक स्वअनुशासन

का यत्न नहीं करते, तब तक हम यीशु के कष्ट के मूल कारण से भटकते रहेंगे। मूलत: तराजू में कुछ पड़ा हुआ था। एक बहुत बड़ा संघर्ष चल रहा था। शैतान पर विजय पाने के लिए यीशु की मानवीयता ईश्वरीयता में नहीं बदली थी। परमेश्वर की परीक्षा बुराई से नहीं हो सकती (याकूब 1:13); बल्कि मनुष्य की हो सकती है। यीशु की भी परीक्षा हुई थी। वह मनुष्य था। मनुष्य बनकर उसने उसी प्रकार युद्ध जीता जैसे हम मनुष्य जीतते हैं। हमारी यह जीत तो पिता के पास हमारी निरन्तर प्रार्थनाओं, उसकी शक्ति और हमें जीवित रखने की उसकी इच्छा में भरोसा रखने से ही होती है (1 कुरिन्थियों 10:13)।

यीशु ने गतसमनी में और क्रूस पर सचमुच में हमें *मनुष्य* होना दिखाया था। यदि हम उसके मनुष्य होने को प्रिय समझें जैसे उसका पिता समझता है, तो हम यह ज़ोर देकर उसे लूटने का यत्न नहीं करेंगे कि वह परमेश्वर होने के कारण विजयी हुआ था। उसकी प्रार्थनाएं सच्चे मन से थीं। पिता उसके साथ था। उसने उसकी प्रार्थनाओं का उत्तर ''कटोरा'' टालकर नहीं, बल्कि यीशु को दृढ़ करके दिया ताकि वह पिता की इच्छा को पूरा कर पाए (लूका 22:43)। इसीलिए, यीशु निश्चय से कह पाया था, ''जो कटोरा पिता ने तुझे दिया है क्या मैं उसे न पीऊं?'' (यूहन्ना 18:11ख)।

जंगल में परीक्षा के समय यीशु ने शैतान से वाद-विवाद में विजय पा ली। गतसमनी में भी उसने भयंकर युद्ध जीत लिया था। क्रूस पर उसने अपनी सबसे बड़ी विजय पा ली थी। जैसा कि उसने स्वयं ही समझाया था, ''जो अपने प्राण बचाता है, वह उसे खोएगा; और जो मेरे कारण अपना प्राण खोता है, वह उसे पाएगा'' (मत्ती 10:39)। गतसमनी में यीशु ''अपने प्राण बचाने'' की परीक्षा में पड़ा था, परन्तु उसने उन्हें बचाने से इन्कार कर दिया। इसके स्थान पर, उसने हमारे लिए क्रूस पर अपना प्राण ''खो'' दिया।

मेरा अनुरोध है कि आप इस विचार को हमेशा सम्भाल कर रखें। उद्धार के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। यदि यीशु सचमुच में मनुष्य नहीं था, यदि उसका मनुष्य होना किसी भी अर्थ में अवास्तविक था, अर्थात छद्म या छाया था, यदि सुसमाचार की पुस्तकों में दिखाया गया व्यक्ति इस पृथ्वी का नहीं था अर्थात कोई स्वर्गदूत, मानवीय रूप में अर्द्ध-देवता था तो छुटकारे की सारी शिक्षा धराशायी हो जाती है। यीशु के पूर्णतया मनुष्य होने की बात पर विश्वास रखें![2]

पाद टिप्पणियां

[1]एडमंड जेकब, *थियोलॉजिक डिक्शनरी ऑफ़ द न्यू टैस्टामेन्ट,* सम्पा. गरहर्ड फ्रेड्रिक, अनु. व सम्पा. ज्योफरी डब्ल्यू. ब्रोमिले (गैंड रेपिड्स, मिशी.: Wm. B. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1974), 9:630 में ''स्यूक।'' [2]जेम्स एस. स्टिवर्ट *द स्ट्रांग नेम* (ग्रैंड रेपिड्स, मिशि.: बेकर, 1972), 76.